

स्वामी विवेकानंद



स्वामी विवेकानंद

सचिन सिंघल



प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

स्वामी विवेकानंद



स्वामी विवेकानंद का जन्म 12 जनवरी, 1863 को कलकत्ता में हुआ था। इनका बचपन का नाम नरेंद्रनाथ था। इनके पिता श्री विश्वनाथ दत्त कलकत्ता हाईकोर्ट के एक प्रसिद्ध वकील थे। इनकी माता श्रीमती भुवनेश्वरी देवी धार्मिक विचारों की महिला थीं। उनका अधिकांश समय भगवान् शिव की पूजा-अर्चना में व्यतीत होता था।

बचपन से ही नरेंद्र अत्यंत कुशाग्र बुद्धि के और नटखट थे। अपने साथी बच्चों के साथ तो वे शरारत करते ही थे, मौका मिलने पर वे अध्यापकों के साथ भी शरारत करने से नहीं चूकते थे।

नरेंद्र के घर में नियमपूर्वक रोज पूजा-पाठ होता था। धार्मिक प्रवृत्ति की महिला होने के कारण माता भुवनेश्वरी देवीजी को पुराण, रामायण, महाभारत आदि की कथा सुनने का बहुत शौक था। कथावाचक बराबर इनके घर आते रहते थे। नियमित रूप से भजन-कीर्तन भी होता रहता था। परिवार के धार्मिक एवं आध्यात्मिक वातावरण के प्रभाव से बालक नरेंद्र के मन में बचपन से ही धर्म एवं अध्यात्म के संस्कार गहरे पड़ गए।



माता-पिता के संस्कारों और धार्मिक वातावरण के कारण बालक के मन में बचपन से ही ईश्वर को जानने और उसे प्राप्त करने की लालसा दिखाई देने लगी थी। ईश्वर के बारे में जानने की उत्सुकता में कभी-कभी वे ऐसे प्रश्न पूछ बैठते थे कि स्वयं माता-पिता और कथावाचक पंडितजी तक चक्कर में पड़ जाते थे।

माता-पिता ने बड़े लाड़-प्यार से अपने इस विलक्षण बालक का पालन-पोषण किया। पाँच वर्ष की आयु का होने पर उन्होंने नरेंद्र की पढ़ाई की व्यवस्था घर पर ही कर दी। नरेंद्र ने मन लगाकर अपने अध्यापक से पढ़ना-लिखना शुरू कर दिया। पढ़ाई के साथ-साथ बालक नरेंद्र अपने घर में या अड़ोस-पड़ोस में होनेवाले धार्मिक आयोजनों में भाग लेकर कीर्तन करने और ध्यान लगाकर बैठने में रुचि लिया करता।

उनकी हवेली के पास एक बगीचा था। एक दिन वे अपने साथियों के साथ ध्यानमग्न होकर बैठे थे कि एक काला साँप बगीचे से निकलकर आया और रेंगता हुआ पूजा की थाली के पास पहुँच गया। साँप की आहट पाकर बच्चों ने आँखें खोलीं तो देखा, एक काला साँप फन फैलाए भगवान् शंकर की मूर्ति के पास खड़ा है। उसे देखते ही सभी बच्चे घबराकर 'साँप-साँप' कहते हुए भागने लगे।

बच्चों ने भुवनेश्वरी देवीजी के पास जाकर उन्हें साँप के बारे में बताया तो वे दौड़कर उस स्थान पर पहुँचीं, जहाँ साँप फन फैलाकर बैठा था और उसके निकट ही बालक नरेंद्र ध्यानमग्न बैठे थे। वह दृश्य देखकर भुवनेश्वरी देवी का कलेजा दहल गया। वे चीखने लगी थीं, परंतु अपने आपको संभालते हुए उन्होंने हाथ जोड़कर शंकर भगवान् से प्रार्थना की कि साँप मेरे बेटे को छोड़ दे और वहाँ से चला जाए।

तभी साँप ने फन समेटा और देखते-ही-देखते वहाँ से चला गया। उसके बाद बालक नरेंद्र का ध्यान खुलवाकर भुवनेश्वरी देवीजी ने उन्हें साँप के बारे में बताया, लेकिन तब भी उन्हें बिलकुल डर नहीं लगा।

पाँच वर्ष की आयु में ही बड़ों की तरह सोचने तथा व्यवहार करनेवाला और अपने विवेक से हर जानकारी की विवेचना करनेवाला यह विलक्षण बालक सदैव अपने आस-पास घटित होनेवाली घटनाओं के बारे में सोचकर स्वयं निष्कर्ष निकालता रहता था।



एक बार विश्वनाथजी के एक मुक्किल, जिन्हें 'खान साहब' कहा जाता था, किसी मुकदमे के सिलसिले में उनकी हवेली में आए हुए थे। उस समय विश्वनाथजी कहीं गए हुए थे, इसलिए खान साहब हवेली की बैठक में रुककर उनके आने की प्रतीक्षा करने लगे। वे हवेली में अकसर आया करते थे, बालक नरेंद्र भी उनसे अच्छी तरह परिचित था। नरेंद्र की बालसुलभ शरारतों और उसके सलोने रूप से खान साहब इतने प्रभावित थे कि हवेली में आते ही वे नरेंद्र के साथ बच्चों की तरह खेलने लगते थे।

हवेली की बैठक में खान साहब को देखकर बालक नरेंद्र दौड़ता हुआ उनके पास पहुँचा और आदरपूर्वक नमस्कार करके उनके साथ खेलने लगा। तभी उनकी नजर सामने रखे एक थैले पर पड़ी। उन्होंने खान साहब से पूछ ही लिया, “खान चाचा, इस थैले में क्या है?” खान साहब ने जवाब दिया, “इसमें अच्छी-अच्छी मिठाइयाँ हैं।” मिठाई की बात सुनकर बालक नरेंद्र की आँखों में चमक आ गई। उन्होंने बड़ी मासूमियत से कहा, “खान चाचा, मुझे मिठाइयाँ बहुत पसंद हैं।”

बालक की बात सुनकर खान साहब धर्मसंकट में पड़ गए। वे नरेंद्र को थैले में से मिठाइयाँ निकालकर देना तो चाहते थे, लेकिन ऐसा करने की उनकी हिम्मत नहीं हो रही थी।

दरअसल, नरेंद्र की माता भुवनेश्वरी देवीजी हिंदुत्व और हिंदू धर्म के प्रति इतनी अंधश्रद्धालु हो चुकी थीं कि किसी मुसलमान के हाथ की कोई चीज न तो स्वयं खा सकती थीं और न ही अपने बच्चों को खिला सकती थीं। ऐसा करना वे अपने धर्म के खिलाफ समझती थीं। यह बात खान साहब अच्छी तरह जानते थे, इसीलिए वे बालक नरेंद्र को मिठाई देने की हिम्मत नहीं कर पा रहे थे। लेकिन बच्चे का आग्रह, उसकी आत्मीयता और निश्छल स्नेह उसकी आँखों से छलका पड़ रहा था। खान साहब बच्चे के मासूम चेहरे की तरफ देखते ही सबकुछ भूल गए और उन्होंने थैले में से मिठाई का एक टुकड़ा निकालकर उसके हाथ में दे दिया।

मिठाई हाथ में आते ही नरेंद्र खुशी से उछलते हुए अपनी माँ के पास पहुँचे। माँ के पूछने पर उन्होंने बताया कि खान चाचा ने यह मिठाई उन्हें खाने के लिए दी है। इतना कहकर वे मिठाई मुँह में डालने ही वाले थे कि माँ ने हाथ पकड़ लिया। गुस्से में आकर उन्होंने बालक नरेंद्र को थप्पड़ लगा दिया। इससे वे एकदम रुआँसे हो गए। उन्हें इसका कोई कारण मालूम न था, इसलिए वे बार-बार सोचते रहे कि आखिर खान साहब की दी हुई मिठाई खाने की

बात पर माँ ने उन्हें थप्पड़ क्यों मारा? उनका कोमल मन इसी उथल-पुथल में था कि अचानक उन्हें ध्यान आया कि एक बार माँ ने उन्हें महतरानी को छूने के कारण भी डाँटा था। इन सब बातों का कारण जानने के लिए बालक नरेंद्र का मन प्रायः उत्सुक रहता था।



एक दिन उनकी हवेली में हनुमानजी की कथा का आयोजन किया गया। बालक नरेंद्र भी सबके साथ बैठकर बड़े ध्यान से कथा सुन रहा था। कथा कहते-कहते पंडितजी ने बताया कि हनुमानजी ने अपनी ब्रह्मचर्य-शक्ति से मृत्यु को भी जीत लिया था। वे अमर हैं और आज भी वे कदली वन (केले के बगीचे) में रहते हैं।

हनुमानजी के बारे में ऐसी बातें सुनकर बालक नरेंद्र के मन में उन्हें देखने की तीव्र लालसा जाग उठी। उनके दिमाग में हवेली के बराबरवाला केले का बगीचा कौंध गया। किसी से कुछ बताए बिना वे तुरंत उठे और केले के बगीचे में जाकर एक पेड़ के नीचे बैठकर हनुमानजी की प्रतीक्षा करने लगे। उन्हें पूरा विश्वास था कि हनुमानजी यहीं-कहीं होंगे और थोड़ी देर में वे जरूर मिलेंगे। इसी प्रतीक्षा में बालक नरेंद्र वहाँ कई घंटों तक बैठा रहा; लेकिन जब काफी समय बीत जाने के बाद भी हनुमानजी नहीं मिले तो वे निराश हो गए। घर जाकर वे सीता-राम की मूर्ति के सामने खूब रोए।

अगले दिन जब कोचवान उन्हें घोड़ागाड़ी में बैठाकर घुमाने ले जा रहा था, तो उन्होंने कोचवान से भी पूछ लिया, “कोचवान काका, हनुमानजी कहाँ मिलेंगे?” बालक नरेंद्र के मुँह से यह विलक्षण प्रश्न सुनकर कोचवान सोच में पड़ गया। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या उत्तर दे। जब बालक नरेंद्र ने अपना प्रश्न दोहराया तो कोचवान ने बताया, “हनुमानजी के दर्शन करना बहुत कठिन है। उसके लिए अविवाहित रहकर जीवन भर ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता है।” कोचवान की बात सुनकर बालक नरेंद्र ने कहा, “ठीक है। मैं भी विवाह नहीं करूँगा और जीवन भर ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा।”

घर लौटते ही नरेंद्र अपनी माँ के पास जाकर कहने लगे, “माँ, मैं विवाह नहीं करूँगा। मैं जीवन भर ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा।” उनकी इस बात से माँ का हृदय आनंद से भर गया। उन्होंने बेटे को गले से लगा लिया।



प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के बाद नरेंद्र को कलकत्ता के मेट्रोपॉलिटन इंस्टीट्यूट में दाखिल करवाया गया। अब उनके साथियों की संख्या भी धीरे-धीरे बढ़ने लगी थी। स्कूल में मन लगाकर पढ़ना और स्कूल से लौटकर खेलना, संगीत सीखना, घुड़सवारी करना, खूब मनन करना और दूसरों के कार्यों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेना उनकी आदत हो गई थी। एक जगह टिककर बैठना या विश्राम करना उन्हें बिलकुल पसंद नहीं था।

पढ़ाई के दौरान, जब नरेंद्र की उम्र 14 वर्ष के लगभग थी, तब वे बीमार पड़ गए। उस समय पिता विश्वनाथजी मध्य प्रदेश के रायपुर शहर में थे। नरेंद्र की बीमारी की खबर पाकर उन्होंने नरेंद्र को अपने पास बुलवा लिया।

रायपुर में रहते हुए नरेंद्र ने जीवन की विविधता को खुली आँखों से देखा। वहाँ के आस-पास की पहाड़ियाँ, घने जंगल उनकी आंतरिक चेतना को जाग्रत करने में अत्यधिक सहयोगी सिद्ध हुए। पहाड़ियों पर भ्रमण करने और घाटियों के निर्जन सौंदर्य को देखकर उनके मन में एक विचित्र ऊर्जा उत्पन्न होती थी।

इस तरह रायपुर के उन्मुक्त वातावरण में नरेंद्र ने दो वर्ष व्यतीत किए। इस दौरान वे पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गए। उनका रूप-स्वरूप सिंह-शावक सा प्रभावशाली हो गया था। रायपुर में दो वर्ष तक रहने के बाद नरेंद्र पुनः कलकत्ता लौट आए। बीमारी की वजह से उनकी स्कूल की पढ़ाई छूट गई थी। कलकत्ता पहुँचने पर उन्होंने पुनः दाखिला ले लिया और पढ़ाई में जुट गए। अपनी मेहनत और लगन के बल पर उन्होंने स्कूल की पढ़ाई सफलतापूर्वक समाप्त कर ली।

उसके बाद 18 वर्ष की अवस्था में नरेंद्र ने कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कॉलेज में दाखिला लिया, लेकिन कुछ समय बाद ही उनका स्वास्थ्य फिर बिगड़ गया, जिससे वे प्रेसीडेंसी कॉलेज में अपनी पढ़ाई जारी नहीं रख सके। इस बार स्वास्थ्य खराब होने के कारण उनका एक साल खराब हो गया। एक वर्ष बाद स्वस्थ होने पर उन्होंने जनरल असेंबली कॉलेज में दाखिला लिया।

नरेंद्रनाथ की दर्शनशास्त्र में विशेष रुचि थी। बचपन से ही मानव-जीवन के समस्त रहस्यों को जान लेने की एक तीव्र लालसा उनके मन में उत्पन्न हो चुकी थी। यह लालसा समय के साथ-साथ बढ़ती ही जा रही थी। जीवन को पूरी तरह समझ लेने की चाह ने उनके अंदर अध्ययन और मनन के प्रति ऐसी निष्ठा पैदा कर दी थी कि जब वे साहित्य अथवा दर्शन का अध्ययन करने बैठते, तब उनकी एकाग्रता को कोई खंडित नहीं कर सकता था। अपने कॉलेज जीवन में ही उन्होंने अनेक पाश्चात्य विद्वानों के दार्शनिक ग्रंथों का अध्ययन कर लिया था।



नरेंद्रनाथ का कंठ बड़ा सुरीला था। नगर में जब भी किसी वैचारिक गोष्ठी, धार्मिक परिचर्चा अथवा प्रवचन आदि का आयोजन किया जाता था तो नरेंद्र उसमें अवश्य शामिल होता था। वहाँ उपस्थित लोग उनका गायन-कीर्तन सुनकर भाव-विभोर होकर झूमने लगते थे।

एक बार नरेंद्रनाथ के पड़ोसी सुरेंद्रनाथ मिश्र के यहाँ एक आनंदोत्सव का आयोजन किया गया था। उसमें दक्षिणेश्वर के संत श्रीरामकृष्ण परमहंस को प्रवचन करने के लिए आमंत्रित किया गया था। कार्यक्रम के आरंभ में नरेंद्र ने अपने सुरीले कंठ से ऐसा गीत गाया कि वहाँ उपस्थित अन्य लोगों के साथ-साथ श्रीरामकृष्ण देव भी भाव-विभोर होकर झूम उठे।

गीत समाप्त होने पर स्वामीजी ने नरेंद्र को अपने पास बुलाया। उनके सामने पहुँचकर नरेंद्र प्रणाम करनेके लिए उनके चरणों में झुके तो श्रीरामकृष्ण देव ने अपना दाहिना हाथ उनके सिर पर रख दिया। उस समय स्वामीजी देव के अलौकिक तेज से नरेंद्र इतने प्रभावित हुए कि उनका रोम-रोम रोमांचित हो उठा और पूरे शरीर में एक अद्भुत लहर दौड़ गई। स्वामीजी ने मुसकराते हुए नरेंद्र से कहा, “अच्छा, अब तू जा, दक्षिणेश्वर आकर मिलना, वहाँ खुलकर बातें होंगी।”

उक्त घटना के बाद नरेंद्र के मन में स्वामीजी के प्रति एक विचित्र आकर्षण उत्पन्न हो गया। उसी दौरान उन्होंने एम.ए. की परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली। निरंतर अध्ययन और मनन में व्यस्त रहने के कारण नरेंद्र को इस बीच दक्षिणेश्वर जाने का ध्यान ही न रहा।

गरमी की छुट्टियों में नरेंद्र ने जब दक्षिणेश्वर जाने का निश्चय किया, तभी पिता ने उनके सामने विवाह का प्रस्ताव रख दिया। उन्होंने विवाह करने से स्पष्ट इनकार कर दिया। उनका जन्म तो वास्तव में समाज एवं देश में फैली कुरीतियों जाति-प्रथा, बाल-विवाह, अंधविश्वास, अज्ञान और धार्मिक पाखंड को दूर कर उसका कल्याण करने के लिए हुआ था।

मन में अनेक प्रकार के द्वंद्व लिये नरेंद्र एक दिन अपने कुछ साथियों के साथ दक्षिणेश्वर पहुँच गए। श्रीरामकृष्ण परमहंस उन्हें देखते ही असीम आनंद से अभिभूत हो गए। उन्हें एकांत में ले जाकर स्वामीजी ने कहा, “तू साधारण आत्मा नहीं है, नरेंद्र। तू तो महान् आत्मा है। मुझे मालूम है, तू क्या है। मैंने तो तुझे उसी दिन पहचान लिया था।”



स्वामीजी से मिलकर नरेंद्र अपने घर लौट गए और स्वामीजी के शब्दों पर गहराई से विचार करना शुरू कर दिया। अंत में उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि अपने मन में उठती शंकाओं को एक दिन मैं उनके समक्ष रखूँगा। यदि उन्होंने उनका समाधान करके मुझे परम सत्य का साक्षात्कार करा दिया तो मैं उन्हें अपना गुरु मान लूँगा और अपना सर्वस्व उनके चरणों में न्योछावर कर दूँगा।

उन दिनों ब्राह्मसमाज की स्थापना हो चुकी थी। उसके समाज-सुधारक दृष्टिकोण का नरेंद्र पर विशेष प्रभाव पड़ा था। इसलिए कभी-कभी वे ब्राह्मसमाज के आयोजनों में शामिल हुआ करते थे।

अपने मन में चल रहे अंतर्द्वंद्वों को शांत करने के उद्देश्य से नरेंद्र कई धर्म-गुरुओं से मिले, लेकिन उनमें से कोई नरेंद्र की कसौटी पर खरा नहीं उतर रहा था। अंत में एक दिन वे दोबारा श्रीरामकृष्ण परमहंस के पास पहुँचे और प्रश्न किया, “महाराज, क्या आपने ईश्वर के दर्शन किए हैं?” स्वामीजी ने अत्यंत सहज भाव से जवाब दिया, “हाँ बेटा, मैंने ईश्वर के साक्षात् दर्शन किए हैं और तुम चाहो तो मैं तुम्हें भी उसी प्रकार ईश्वर के दर्शन करा सकता हूँ; परंतु एक शर्त है, सबकुछ छोड़कर मेरे पास आ जाओ और जैसा मैं कहूँ, वैसा ही करो।”

ईश्वर के दर्शन की बात सुनकर नरेंद्र का चेहरा खुशी से चमक उठा। उसके बाद धीरे-धीरे उनका मन श्रीरामकृष्ण देव के चरणों में पूर्णतः अर्पित हो गया।

एक दिन संध्या के समय श्रीरामकृष्ण देव अपने सामने बैठे नरेंद्र को एकटक देख रहे थे। अचानक वे अपने स्थान से उठकर नरेंद्र के समीप पहुँचे और अपना दायाँ पैर उठाकर नरेंद्र के कंधे पर रख दिया। चरण का स्पर्श पाते ही नरेंद्र के मन की सारी शंकाएँ मिट गईं। उन्हें लगा कि अचानक सभी वस्तुएँ अनंत सत्ता में विलीन हो गई हैं। केवल वे अकेले रह गए हैं। तभी स्वामीजी ने अपना दायाँ हाथ नरेंद्र के सीने पर रख दिया और सबकुछ पुनः सामान्य हो गया।

अब नरेंद्र ने श्रीरामकृष्ण देव को अपना गुरु मान लिया था। उनका जीवन अध्यात्म की नई धारा में बहने लगा। श्रीरामकृष्ण परमहंस भी नरेंद्र के स्नेह में डूब गए। उसके बाद एक दिन उन्होंने नरेंद्र को संन्यास की दीक्षा दे दी।

संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् नरेंद्रनाथ को श्रीरामकृष्ण परमहंस ने नया नाम दिया—स्वामी विवेकानंद। उसके बाद गुरु ने अपनी संपूर्ण शक्तियाँ अपने नवसंन्यासी शिष्य विवेकानंद को सौंप दीं, ताकि वह विश्व-कल्याण कर भारत का नाम गौरवान्वित कर सके।



स्वामी विवेकानंद को उन्होंने उपदेश दिया—“संन्यास का उद्देश्य मुक्त होकर लोकसेवा करना है। अपने ही मोक्ष का चिंतन करनेवाला मनुष्य स्वार्थी होता है। आज लाखों लोग दुःख के बंधनों में जकड़े हुए हैं, उन्हें इस बंधन से मुक्त करना ही संन्यासी का सच्चा कर्तव्य है। भगवान् के दर्शन करने हों तो मनुष्यमात्र की सेवा करो।”

अगस्त 1886 में श्रीरामकृष्ण परमहंस ने महासमाधि ले ली। उसके बाद स्वामी विवेकानंद बराहनगर के मठ में आकर रहने लगे। वहाँ उन्होंने अनेक धार्मिक ग्रंथों और दर्शनशास्त्र का गहन अध्ययन किया।

स्वामी विवेकानंद के नेतृत्व में श्रीरामकृष्ण परमहंस के शिष्य उस मठ में अपने गुरु के आदेशों का पालन करते हुए काम करने लगे। भजन-कीर्तन, धार्मिक ग्रंथों का पठन-पाठन, ध्यान और जाप लगातार चलता रहता था। स्वामी विवेकानंद सभी संन्यासियों के प्राण थे। उनका आदेश गुरु का आदेश माना जाता था। 27 वर्ष की अवस्था में स्वामी विवेकानंद ने बिहार तथा उत्तर प्रदेश के विभिन्न तीर्थस्थानों का भ्रमण किया। इस यात्रा के दौरान उन्हें अनेक विद्वान्, दार्शनिक तथा धर्मगुरु मिले। अनेक संत-महात्माओं से भी भेंट हुई। सबके सामने उन्होंने एक ही प्रश्न रखा कि गरीबी और भूख से अभिशप्त हमारे देश की आम जनता का उद्धार कैसे हो? देश के प्रति विवेकानंद की चिंता और उनकी आध्यात्मिक शक्ति से प्रभावित होकर कई लोग उनके साथ जुड़ गए। धीरे-धीरे उनके प्रशंसकों की संख्या बढ़ने लगी।

अपने भ्रमण के दौरान स्वामी विवेकानंद ने काशी, प्रयाग, मथुरा, वृंदावन आदि तीर्थों का भ्रमण किया। इस यात्रा में उन्होंने अनुभव किया कि लोगों में धर्म के प्रति अनुराग की कमी नहीं है, मगर सामाजिक परिस्थितियाँ कुछ ऐसी हैं कि लोगों में स्वाभाविक गतिशीलता का अभाव है।

11 सितंबर, 1893 को अमेरिका के शिकागो शहर में एक सर्वधर्म सम्मेलन का आयोजन किया गया था। उसमें संसार के विभिन्न देशों से विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधि सम्मिलित होने के लिए पहुँचे थे। भारत से भी अनेक प्रतिनिधि उस सम्मेलन में भाग लेने के लिए गए थे। स्वामी विवेकानंद भी अपने कुछ उत्साही शिष्यों के सहयोग से सम्मेलन में भाग लेने के लिए शिकागो पहुँचे।

स्वामी विवेकानंद धैर्यपूर्वक अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहे थे। जैसे ही उनका नाम पुकारा गया, वे मंच के अग्रभाग में पहुँचे। गेरुआ वस्त्र, उन्नत मस्तक, मर्मभेदी दृष्टि, मनोहर कांतिमय शरीर—इस विचित्र वेशधारी और सबसे कम आयु के वक्ता को देखकर दर्शक चौंके। थोड़ी देर बाद जब स्वामी विवेकानंद ने सनातन हिंदू धर्म की

व्याख्या करनी शुरू की तो उनकी तर्कशक्ति और धर्म के प्रति उनके विचारों को सुनकर वहाँ उपस्थित सभी दर्शक स्तब्ध रह गए। उन्होंने भारत के मूल धर्म का परिचय देते हुए कहा, “मैं जिस धर्म का प्रतिनिधि हूँ, वह सनातन हिंदू धर्म है। इसके मूल में संपूर्ण मानव जाति का कल्याण निहित है। यह धर्म इतना व्यापक है कि दुनिया के सभी धर्म इसमें समाहित हो सकते हैं।”

स्वामीजी के व्याख्यान से प्रभावित होकर पूरा अमेरिका ही उनकी प्रशंसा करने लगा। शिकागो में कुछ दिन रहकर स्वामीजी न्यूयॉर्क गए। वहाँ उन्होंने राजयोग और ज्ञानयोग पर अपने व्याख्यान दिए।

एशिया, यूरोप और अरब देशों के लोग स्वामीजी के विचारों से इतने प्रभावित हुए कि वे उनके दर्शन के लिए उन्हें अपने यहाँ आमंत्रित करने लगे। धीरे-धीरे विदेशों में भी स्वामीजी के कई शिष्य बन गए। उन्होंने स्वामीजी की आजीवन सेवा करने का प्रण कर लिया था।

विदेशों में हिंदू धर्म की विजय-पताका फहराने के बाद जब स्वामीजी स्वदेश लौटे तो सभी ने दिल खोलकर उनका स्वागत किया। देश में रहकर ही स्वामीजी ने 1 मई, 1887 को श्रीरामकृष्ण मिशन की स्थापना की।

4 जुलाई, 1902 को यह महान् तपस्वी अपनी इहलीला समाप्त कर परमात्मा में विलीन हो गया।

□□□